तीर्थ स्थलों पर नदी-जल का प्रदूषण

अंकुश्री

तीर्थ स्थलों पर लोग दूर-दराज से आते हैं। आने वाले यात्रियों के साथ पूजा-पाठ और खाने-पीने की वस्तुएं रहती हैं। यह आज की स्थिति नहीं है, बल्कि सदियों से चली आ रही है। प्राचीन काल में तीर्थ यात्रियों के पास खाने-पीने की वस्तुएं अधिक रहा करती थीं, क्योंकि आज की तरह जगह-जगह दुकानों की व्यवस्था नहीं थी। मगर पहले के तीर्थ यात्रियों द्वारा लाये गये सामानों के साथ फेंकने लायक सामान बहुत कम हुआ करता था। अर्थात् उनके आने से तीर्थ स्थलों पर उच्छीष्ट का विसर्जन कम होता था। ऐसा इसलिये कि वे लोग कपड़े के थैले का उपयोग अधिक करते थे। कुछ सामान कागज में भी लिपटा रहता था। इसलिये उनके द्वारा तीर्थ स्थलों और नदी किनारे कचरा बहुत कम फैलाया जाता था।

जल पग-पग पर उपयोगी है। भोजन, स्नान, साफ-सफाई, सिंचाई, उद्योग, व्यवसाय, यातायात आदि अनेक कामों में जल का उपयोग होता है। स्वास्थ्य के साथ जल का संबंध है ही, बीमारी से भी इसका सीधा संबंध है। इन्हीं कारणों से, आदि काल से मानव-आबादी नदियों के किनारे रचती-बसती रही है। हमारे देश की सभी नदियां पूजनीय हैं। हर नदी में स्नान करने वाले ध्यान-पूजा करते हैं। इसके लिये नदी किनारे जगह-जगह मंदिर बने हुए हैं। कहीं-कहीं मंदिरों की बहुलता, विशालता और प्राचीनता ने उस स्थल को तीर्थ का रूप दे दिया है। इसी क्रम में विभिन्न नदियों के किनारे तरह-तरह के तीर्थ स्थलों का निर्माण हुआ, जिससे उस स्थल का विकास हुआ, और ऐसी जगह दूर-दूर से लोग आते हैं और नदी-जल में स्नान के उपरांत मंदिरों में पूजा-अर्चना कर अपने मन को तृप्त करते हैं।

हमारे देश में तीर्थ स्थलों की भरमार है। पहाड़ों के ऊपर, मैदानों में, समुद्र के किनारे, नदी-तट आदि स्थलों पर अनेक तीर्थ स्थल बने हुए हैं। मगर सबसे अधिक तीर्थ स्थल नदियों के किनारे बसे हुए हैं। हमारे यहां नदी को इतना गुणकारी और उपयोगी माना जाता है कि तीन नदियों के मिलन स्थल प्रयाग को 'तिरथराज' की संज्ञा दी गयी है। कहा गया है कि वह देश धन्य है, जहां गंगा बहती है।

"धन्य देस सो जहं सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी।।"

प्राचीन समय में आबादी कम थी और अपार भू-संपदा थी। इसलिये नदी किनारे के तीर्थ स्थलों पर आने वाले तीर्थ यात्रियों को भी रहने, पसरने, फैलने और घूमने के लिये जगह की बहुलता थी। कहीं संकीर्णता की बात नहीं थी, न विचार-व्यवहार में और न रहने- घूमने में। हर तरफ खुलापन ही खुलापन था। इसलिये उनके द्वारा जाने-अनजाने जो भी गंदगी फैलायी जाती थी, क्षेत्र के विस्तार के कारण वह समेकित रूप में नहीं दिखाई देती थी।

तीर्थ स्थलों पर लोग दूर- दराज से आते हैं। आने वाले यात्रियों के साथ पूजा-पाठ और खाने-पीने की वस्तुएं रहती हैं। यह आज की स्थिति नहीं है, बल्कि सदियों से चली आ रही है। प्राचीन काल में तीर्थ यात्रियों के पास खाने-पीने की वस्तुएं अधिक रहा करती थीं, क्योंकि आज की तरह जगह-जगह दुकानों की व्यवस्था नहीं थी। मगर पहले के तीर्थ यात्रियों द्वारा लाये गये सामानों के साथ फेंकने लायक सामान बहुत कम हुआ करता था। अर्थात् उनके आने से तीर्थ स्थलों पर उच्छीष्ट का विसर्जन कम होता था। ऐसा इसलिये कि वे लोग कपड़े के थैले का उपयोग अधिक करते थे। कुछ सामान कागज में भी लिपटा रहता था।

इसलिये उनके द्वारा तीर्थ स्थलों और नदी किनारे कचरा बहुत कम फैलाया जाता था।

मगर आज की स्थिति बिल्कुल भिन्न हो गयी है। जगह-जगह दुकानें खुल गयी हैं। फिर भी तीर्थ यात्रियों द्वारा तीर्थ स्थलों और नदियों के किनारे कचरा अधिक फैलाया जाता है। इसका प्रमुख कारण है उनके साथ लाये गये सामान की पैकेजिंग में प्रयुक्त पोलिथीन। आज हर सामान पोलिथीन में पैक करके मिल रहा है। ग्राहक करे तो क्या?

जल-प्रवाह से प्रदूषण का विघटन

नदी के जल में इतना प्रवाह होता है कि उसमें गिरने वाले सामान्य कचरे को वह विघटित कर देता है। गर्मी के दिनों में सूखी हुई नदी की बात नहीं की जा सकती, मगर बरसात और जाड़े के मौसम में नदी में जल की मात्रा अच्छी रहने से उसमें प्रवाह भी अधिक होता है। तीर्थ स्थल पर आने वाले श्रद्धालुओं द्वारा नदी में स्नान करने के बाद घाट पर सिंदूर, बतासा, फूल आदि से पूजा की जाती है। प्रदूषण नियंत्रण के नाम पर ऐसे लोगों को पूजा करने से रोकना सर्वथा अनुचित होगा, क्योंकि सिंदूर, बतासा और फूल चढ़ाने से नदी प्रदूषित नहीं होती है। नदी के प्रदूषण का वास्तविक कारण उसमें बहाए जाने वाले अविघटनीय पदार्थ हैं, जिनमें पोलिथीन प्रमुख है।

जलीय जीवों का संरक्षण

नदी में कई तरह के प्राणी रहते हैं। तरह-तरह की मछलियां रहती ही हैं, उसमें डाल्फिन का भी वास हो सकता है। किसी-किसी नदी में कछुए भी पाये जाते हैं। छोटे-बड़े दूसरे अनेक प्रकार के प्राणी भी नदी-जल में पाये जाते हैं। प्राणियों की तरह ही कई प्रकार की वनस्पतियां भी नदी के जल में पायी जाती हैं। ये वनस्पतियां जलीय प्राणियों के आहार के रूप में काम आती हैं। नदियों के किनारे कई तरह के शैवाल रहते हैं, जिनमें छोटे-बड़े तरह-तरह के कीट पाये जाते हैं। उन कीटों का जीवन चक्र शैवालों और वनस्पतियों के सहारे ही पूर्ण होता है। उन छोटे-बड़े कीटों को मछलियां खाती हैं। छोटी मछलियों को बड़ी मछलियां खाती हैं। जलीय कीट और मछलियां जल के कचरे को चट कर जाती हैं। इस तरह संपूर्ण जल क्षेत्र पारिस्थितिकी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसे जितना बाधित किया जायेगा पर्यावरण को उतना ही नुकसान पहुंचेगा।

तीर्थ स्थलों अथवा अन्य नदी-घाटों पर जब जल में डिटरजेंट और ऐसे दूसरे अन्य पदार्थों का उत्सर्जन होता है जल के अंदर की संपूर्ण प्राकृतिक व्यवस्था बाधित हो जाती है और जलीय जीवों पर खतरा आ जाता हैं। ऐसे खतरों के प्रति

जलीय कीट और मछलियां जल क्षेत्र पारस्थितिकी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

आम तौर पर नदियों के प्रदूषण का मुख्य कारण औद्योगिक कचरे का उत्सर्जन माना जाता है। मगर इन बड़े कारकों के अतिरिक्त छोटे-छोटे अनेक कारक भी हैं, जिनसे हमारी नदियां प्रदूषित होती हैं। नदी किनारे बने छोटे-बड़े मंदिरों से लेकर बड़े तीर्थ स्थलों पर भी लोग कपड़ा धोते हैं और डिटरजेंट का प्रयोग करते हैं। साबुन मल-मल कर स्नान करने से भी हमारी नदियों का जल प्रदूषित होता है और उस कारण आसपास स्नान करने वालों पर इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

सावधानी नहीं बरती गयी तो इसका दुष्प्रभाव अति दूरगामी हो सकता है। कई नदियां तो बुरी तरह प्रदूषित हो चुकी हैं। झारखण्ड की राजधानी रांची शहर से स्वर्णरेखा, हरमू, हिनू आदि नदियां गुजरती हैं। इन सभी नदियों का जल बुरी तरह प्रदूषित हो चुका है और ये नदियां अधिकतर जगह नाले के रूप में दिखाई देती हैं। इन नदियों में कोई स्नान नहीं कर सकता। यहां तक कि उसमें हाथ-पैर भी नहीं धोया जा सकता। उसका जल इतना गंदा है कि उसे जानवर भी नहीं पी पाते हैं।

आम तौर पर नदियों के प्रदूषण का मुख्य कारण औद्योगिक कचरे का उत्सर्जन माना जाता है। मगर इन बड़े कारकों के अतिरिक्त छोटे-छोटे अनेक कारक भी हैं, जिनसे हमारी नदियां प्रदूषित होती हैं। नदी किनारे बने छोटे-बड़े मंदिरों से लेकर बड़े तीर्थ स्थलों पर भी लोग कपड़ा धोते हैं और डिटरजेंट का प्रयोग करते हैं। साबुन मल-मल कर स्नान करने से भी हमारी नदियों का जल प्रदूषित होता है और उस कारण आसपास स्नान करने वालों पर इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

नदी घाटों पर डिटरजेंट का प्रयोग

तीर्थ यात्रियों और निकटवर्ती लोगों द्वारा नदी के घाटों पर कपड़े धोने के लिये डिटरजेंट का प्रयोग किया जाना आम बात है। अधिकतर निकटवर्ती गरीब लोग ही कपड़े धोने के लिये नदी किनारे जाते हैं। उन लोगों द्वारा सस्ते डिटरजेंट का प्रयोग किया जाता है, जो जल प्रदूषण के लिये अधिक घातक है। इसलिये नदी-घाटों पर कपड़े धोने की सख्त मनाही होनी चाहिये।

कपड़े धोने के लिये जो स्थानीय लोग नदी जल का प्रयोग करते हैं, उनमें से अधिकतर लोग अनपढ़-गंवार होते हैं। घनी आबादी वाली नदी में आसपास के पढ़े-लिखे और संपन्न लोगों के कपड़े भी धुलते होंगे। मगर यह काम उनके द्वारा सीधे तौर पर नहीं करके किसी दाई-नौकर द्वारा कराया जाता है। जानते हुए भी बहुत लोग यह सोचते हैं कि एक आदमी के ऐसा करने से क्या होगा। ऐसे सभी लोगों को नदी-जल को प्रदूषित होने से बचाने के लिये समय-समय पर बताते रहना आवश्यक है।

इसके लिये नदी-घाटों पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखित तख्तियां टांगना, निकटवर्ती दीवारों और ऊंची-ऊंची सीढ़ियों पर सूचना लिखना आवश्यक है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि घाटों पर कपड़ा साफ करने वालों को मौखिक रूप से इससे होने वाली हानि के बारे में बताया जाये। जहां घनी आबादी है, वहां के नदी-घाटों पर एकाधिक बार मौखिक रूप से यह बताना आवश्यक है कि डिटरजेंट और साबुन के प्रभाव से नदी

का जल प्रदूषित हो जायेगा और इससे उन्हें भी नुकसान झेलना पड़ेगा।

मौखिक सूचना की जवाबदेही तीर्थ स्थलों पर रहने वाले पुजारियों को दी जा सकती है। प्रचार के इस मौखिक ढंग का प्रचलन शुरू हो जाने पर स्वयंसेवी संस्थाओं और सजग तथा उत्साही युवकों द्वारा भी यह काम स्वतःस्फूर्त होकर किया जाने लगेगा। सुबह के समय हर आधे घंटे पर लोगों को मना करते रहने से लोग नदी में कपड़े धोना बंद कर देंगे। इसके लिये आरंभिक कुछ दिनों तक अधिक सजगता की जरूरत पड़ेगी। उसके बाद लोगों की यह सहज प्रवृत्ति हो जायेगी और लोग स्वयं जल में गंदगी फैलाना बंद कर देंगे।

लिखित और मौखिक सूचना देने के बाद भी यदि बात नहीं बने तो कठोर कदम उठाने से नहीं हिचकना चाहिये। कभी-कभी झूठी कठोरता प्रदर्शित करने से भी काम बन जाता है। तीर्थ स्थलों के घाटों पर दूर से ही चिल्ला कर कपड़े धोने वाले को डराया-धमकाया जा सकता है कि उनके कपड़े नदी में बहा दिये जायेंगे। कभी-कभार कुछ लोगों के कपड़े नदी में सचमुच फेंके भी जा सकते हैं। इससे लोगों में भय उत्पन्न होगा और वे नदी-तट पर कपड़े धोने से बाज आयेंगे। कपड़े धोने का काम अधिकतर महिलाएं ही करती हैं। इसलिये पुरुषों द्वारा उनसे उलझने से अच्छा होगा कि महिलाओं के सहयोग से इसे कार्य रूप दिया जाये। आसपास की चार-पांच युवतियां कभी-कभी घाटों पर जाकर कपड़े धोने वाली महिलाओं को मना करने का काम कर सकती हैं और इस तरह नदी को डिटरजेंट से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है।

नदी में स्नानकर्ताओं द्वारा साबुन का प्रयोग

तीर्थ स्थल के निकटवर्ती नदियों में स्नान करने वालों की संख्या काफी होती है। नदी तो स्नान करने के लिये है ही। सच्चाई यह है कि स्नान का सबसे बड़ा और अच्छा जल-स्रोत नदी ही है। मगर इस बात का सबको ध्यान रखना चाहिये कि जिस नदी में वे स्नान कर रहे हैं, वह उनके कारण प्रदूषित नहीं हो। इसलिये सबका यह कर्तव्य है कि नदी में स्नान के दौरान वे साबुन का प्रयोग नहीं करें। साबुन लगा कर नदी में स्नान करने से आसपास का पानी प्रदूषित हो ही जाता है, वहां के जलीय जीव भी मर जाते हैं, जिससे जल की स्वतः सफाई की प्रक्रिया बाधित हो जाती है। नदी में स्नान करने वालों के हाथ में साबुन तो छोटा-सा होता है, मगर उसके प्रयोग का कुपरिणाम बहुत बड़ा होता है।

तीर्थ स्थल के निकटवर्ती नदियों में स्नान करने वालों की संख्या काफी होती है। नदी तो स्नान करने के लिये है ही। सच्चाई यह है कि स्नान का सबसे बड़ा और अच्छा जल-स्रोत नदी ही है। मगर इस बात का सबको ध्यान रखना चाहिये कि जिस नदी में वे स्नान कर रहे हैं, वह उनके कारण प्रदूषित नहीं हो। इसलिये सबका यह कर्तव्य है कि नदी में स्नान के दौरान वे साबुन का प्रयोग नहीं करें। साबुन लगा कर नदी में स्नान करने से आसपास का पानी प्रदूषित हो ही जाता है, वहां के जलीय जीव भी मर जाते हैं, जिससे जल की स्वतः सफाई की प्रक्रिया बाधित हो जाती है। नदी में स्नान करने वालों के हाथ में साबुन तो छोटा-सा होता है, मगर उसके प्रयोग का कुपरिणाम बहुत बड़ा होता है।

साबुन लगा कर नदी में स्नान करने से पानी प्रदूषित हो जाता है।

आम तौर पर यह बात सभी जानते हैं कि साबुन या डिटरजेंट का प्रयोग करने से जल प्रदूषित हो जाता है। फिर भी लोग सोचते हैं कि एक उनके द्वारा साबुन का प्रयोग करने से इतनी बड़ी नदी का क्या हो जायेगा। उनकी यही सोच सबसे बड़ी बाधा है। उन्हें सोचना चाहिये कि जब बूंद-बूंद कर घड़ा भर सकता है तो थोड़ा-थोड़ा कर के नदी-जल का प्रदूषित हो जाना कोई असंगत बात नहीं है।

सिर के बालों अथवा शरीर की सफाई के लिये साबुन के कई विकल्प उपलब्ध हैं। साबुन या शैम्पू के प्रचलित उपयोग से हट कर थोड़ा सोचने पर ऐसे विकल्प नज़र आ जाते हैं। साबुन का सबसे अच्छा विकल्प है नदी की मिट्टी। जहां स्नान किया जाता है, वहीं पैरों के पास से मिट्टी निकाल कर उसे साबुन की तरह प्रयोग में लाया जा सकता है। इससे न केवल बाल और शरीर की सफाई हो जाती है, बल्कि सारी चिपचिपाहट खत्म हो जाती है और दिन भर शरीर चिकना और मुलायम बना रहता है। दूसरा विकल्प चने की दाल का बेसन है। इसका प्रयोग भी काफी लाभकारी है और इससे जल-प्रदूषण का खतरा नहीं रहता। इसी तरह और भी विकल्प हो सकते हैं, जिनका प्रयोग कर नदी-जल को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है।

प्रदूषण का सबसे बड़ा कारक पोलिथीन

आधुनिक युग में प्रदूषण का सबसे बड़ा कोई एक कारक है तो वह है पोलिथीन। इसका प्रभाव किसी स्थान विशेष तक सिमटा हुआ नहीं है, बल्कि यह वैश्विक समस्या बन चुका है। बहुआयामी उपयोगिता के कारण इसके विभिन्न रूपों का धड़ल्ले से प्रयोग होने लगा है। हवा, थल, जल सभी जगह यह बुरी तरह अपना वर्चस्व जमाये हुए है। तीर्थ स्थलों पर पोलिथीन का खूब प्रयोग किया जाता है।

पूजन-सामग्री, खाद्य- सामग्री, मेकअप के सामान, दूध, पानी, तेल, मसाला, ग्रोसरी के अन्य सामान, हरी सब्जी, खिलौने, पूजन की पुस्तकें, दवा, कपड़ा आदि अनेक सारे सामान पोलिथीन बैग में दिये-लिये जाते हैं।

तीर्थ स्थलों के निकटवर्ती नदी किनारे घाटों पर बड़े-बड़े जालीदार कूड़ेदान रख देने से लोग कचरा नदी में नहीं डाल कर उसी पात्र में डालेंगे। इससे पोलिथीन कैरी बैग उसी कूड़ेदान में जमा हो जायेगा और नदी का जल प्रदूषित होने से बच जायेगा। इसके लिये दो फीट गुणे तीन फीट के डेढ़ फीट गहरे पात्र का प्रयोग किया जा सकता है। मोटी जाली को एंगल आइरन के सहारे जोड़ कर तीन-चार फीट ऊंचे स्टैंड वाले ऐसे कूड़ेदानों को थोड़ी-थोड़ी दूरी पर लगाया जा सकता है। इस कूड़ेदान को ऊंचा रखना इसलिये जरूरी है, ताकि नदी का जल स्तर बढ़ने पर कचरा तुरंत बह कर नदी में नहीं चला जाये। जल स्तर अधिक बढ़ जाने पर कूड़ेदान को उठा कर ऊपर की ओर बढ़ाया जा सकता है। नदियों की पवित्रता और तीर्थ स्थलों के प्रति लोगों की श्रद्धा बनी रहे इसके लिये यह सबका कर्तव्य है कि वहां गंदगी नहीं फैलायी जाये।

अपने उपयोग का सामान निकालने के बाद पोलिथीन बैग को फेंक दिया जाता है। हवा और जल के माध्यम से वह पोलिथीन बैग उड़-बह कर अंतिम रूप से जल-स्रोतों तक पहुंच जाता है। उसके बाद गीला हो जाने के कारण वह उड़ नहीं पाता और नाली, तालाब, नदी आदि हर जगह कचरे के रूप में जमा हो जाता है। आबादी के आसपास की नदियां पोलिथीन के कारण बुरी तरह जाम हो जाती हैं और वहां बजबजाती हुई गंदगी देखते बनती है। नदी हो या नाला, जल के ठहराव के कारण वहां मच्छरों की वंश-वृद्धि होना स्वाभाविक है। अर्थात् पोलिथीन से फैली गंदगी के कारण मच्छर उसका सह-उत्पादक बना हुआ है।

तीर्थ स्थलों की विशेषता है कि वहां जाने वाले लोग करीब सारे सामान पोलिथीन बैग में लेकर जाते हैं। यात्रा में सामान रखने के लिये यह सर्वाधिक उपयुक्त और सुरक्षित लगता है। मंदिर में पूजा के दौरान सिंदूर, रोड़ी, फूल, अच्छत, प्रसाद, चूड़ी आदि निकाल लेने के बाद बचा हुआ पोलिथीन वहीं फेंक दिया जाता है। आम आदमी की यह सहज प्रक्रिया है। नदी किनारे के तीर्थ स्थलों के ऐसे सारे पोलिथीन उड़-बह कर नदी में चले जाते हैं, जिससे नदियां बुरी तरह गंदी हो जाती हैं। नदियों की ऐसी गंदगी को साफ करते रहने पर भी वह फिर से गंदी हो जाती है, क्योंकि वहां तीर्थ यात्रियों का आने का क्रम बना रहता है। सच्चाई तो यह है कि पोलिथीन के कारण जो प्रदूषण फैल रहा है, उससे निपटने के लिये इसकी सफाई करना ऊपरी व्यवस्था है। जल से भीग कर जो पोलिथीन तलहटी में चला जाता है, उसकी मात्रा बढ़ती जाती है।

तीर्थ स्थलों पर प्रदूषण फैलाने के लिए जिम्मेदार है पोलिथीन।

नदी किनारे बने तीर्थ स्थलों पर आने वाले यात्रियों द्वारा यदि पोलिथीन का प्रयोग नहीं किया जाये तो नदी-जल प्रदूषण से बच सकती है। मगर ऐसा सिर्फ तीर्थ यात्रियों के प्रयास से संभव नहीं है। दुकानदारों द्वारा जिस पैकेट में सामान दिया जाता है, उसी में लेकर आना ग्राहकों की मजबूरी होती है। हां, बड़े सामानों के लिये ग्राहक अपने साथ थैला ले जा सकते हैं, जिसका अब धीरे-धीरे प्रचलन बढ़ रहा है। मगर छोटे-छोटे सामानों के लिये तो दुकानदारों को ही वैकल्पिक व्यवस्था करनी होगी, क्योंकि प्रत्येक ग्राहक छोटे-छोटे पैकेट लेकर दुकान नहीं जा सकता।

पहले कागज के पैकेट का प्रयोग किया जाता था। छोटे पैकेट के लिये हल्के कागज और बड़े पैकेट के लिये मोटे कागज के थैलों का प्रचलन था। कागज के थैलों की विशेषता है कि फेंके जाने पर उससे गंदगी भले दिखाई दे, मगर भविष्य में वह सड़-गल जाते हैं और इससे वातावरण का स्थाई प्रदूषण नहीं हो पाता। मगर पोलिथीन के प्रचलन ने पर्यावरण को तहस-नहस कर दिया है।

पोलिथीन की शुरूआत

प्लास्टिक पोलीमर की खोज सन् 1835 ई. में हुई थी, मगर प्लास्टिक युग की शुरूआत सन् 1909 ई0 में बेल्जियम मूल के अमेरिकी वैज्ञानिक हेनड्रिक बेकलैंड द्वारा बेकेलाइट की खोज के बाद हुई। प्लास्टिक का बहुआयामी उपयोग इसके हल्के, टिकाऊ और इच्छित आकार में ढाले जाने के गुण के कारण तेजी से बढ़ा। लकड़ी, पत्ता, मिट्टी, कागज, कपड़ा, जूट, धातु, कांच, रूई आदि से जिस पात्र या सामग्री को तैयार किया जाता था, उनका निर्माण प्लास्टिक से होने लगा। कागज, कपड़ा और जूट की थैलियों की जगह प्लास्टिक की थैलियों ने ले ली, जिसे पोलिथीन बैग कहते हैं। कांच और मिट्टी की जगह प्लास्टिक की बोतलें और डिब्बे आदि बन गये। विभिन्न प्रकार के फर्नीचर, खिड़की-दरवाजे आदि लकड़ी के बदले प्लास्टिक के बनने लगे। यहां तक कि कपड़ा उद्योग में रूई और रेशम की जगह प्लास्टिक जाति के नायलान, टेरीलीन आदि का उपयोग होने लगा। सूती कपड़ों की अपेक्षा सिंथेटिक कपड़ों का रखरखाव आसान होने और अधिक मजबूत होने के कारण कपड़ा उद्योग में इसका धड़ल्ले से प्रयोग होने लगा। इन कपड़ों के आ जाने से सूती कपड़ों का प्रयोग कम होने लगा।

नया सामान सबको अच्छा लगता है। मगर धीरे-धीरे लोगों को यह पता चल चुका है कि प्लास्टिक के पात्रों में रखे भोज्य और पेय पदार्थ हों या सिंथेटिक कपड़े-इनका उपयोग स्वास्थ्य के लिये बहुत हानिकारक है। यह दीगर बात है कि जानते हुए भी लोग प्लास्टिक का विभिन्न रूपों में प्रयोग कर रहे हैं। पोलिथीन के आविष्कार ने विज्ञान जगत से लेकर आम जनों तक के लिये तरह-तरह की सुविधाएं ला दी हैं, मगर इसके बैग और पैकेट्स ने इसे कलंकित कर दिया

है। तीर्थ स्थलों और नदियों पर इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

तीर्थ स्थलों पर और उसके आसपास अनेक छोटे-बड़े होटल और ढाबे बने होते हैं। ठेलों और खोमचे वालों की भी वहां भीड़ लगी रहती है। उन जगहों में प्लास्टिक के कप, गिलास, कटोरी और थाली का बेरोक-टोक उपयोग होता है। पहले लोग किसी आयोजन या तीर्थ यात्रा के दौरान भोजन परोसने के लिये पलाश, महुआ, साल, कटहल, केला आदि की पत्तियों से बने पत्तल का उपयोग करते थे। ये सारे पदार्थ प्रकृति से जुड़े हुए थे और इनका उपयोग स्वास्थ्य के लिये हानिकारक नहीं था। हालांकि आज भी कुछ लोग पत्तल का प्रयोग करना श्रेयष्कर समझते हैं। दक्षिण भारत और अन्य कई जगह आज भी केले के पत्ते पर भोजन परोसा जाता है। वहां बड़े-बड़े होटलों में स्टील के प्लेट तो दिये जाते हैं, मगर भोजन परोसा जाता है केले के पत्ते पर ही। पत्तल में खाने से भोजन की शुद्धता बनी रहती है और प्लास्टिक के घातक अवगुणों से बचने में सहायता मिलती है। पत्तल पर भोजन करना सामाजिक अर्थ व्यवस्था का एक हिस्सा भी है, क्योंकि पत्तल उद्योग में लगे हजारों लोगों को इससे

प्रयास किया जाए तो प्राकृतिक पत्तों से बने पत्तलों का उपयोग पुनः लोकप्रिय हो सकता है।

संबल प्राप्त होता है। प्लास्टिक की सामग्रियों का निर्माण वृहत् उद्योग का काम है, जबकि पत्तल निर्माण कुटीर उद्योग है। यदि थोड़ा प्रयास किया जाये तो प्राकृतिक पत्तों से बने पत्तलों का उपयोग पुनः लोकप्रिय बन सकता है। इससे प्रदूषण को बहुत बड़ी राहत मिलेगी और हमारी नदियों की पवित्रता इतनी खराब होने से बच जायेगी।

पोलिथीन के निर्माण और वितरण पर रोक

बहुत हो-हल्ला करने पर भी नदियों के किनारे के तीर्थ स्थलों पर पोलिथीन के प्रयोग पर रोक नहीं लग पायी है। स्थानीय सामग्रियों के अलावा तीर्थ यात्री बाहर से भी अपने साथ पोलिथीन की छोटी-बड़ी थैलियां लेकर आते हैं और उपयोग के बाद उसे वहीं फेंक देते हैं। इसके लिये उपयोगकर्ताओं या इसके बिक्रीकर्ता दुकानदारों पर सिकंजा कसने का प्रयास किया जाता है, जो बिल्कुल बेकार है, क्योंकि उनकी संख्या बहुत अधिक है। हां, इससे धर-पकड़ करने वालों की कमाई अवश्य हो जाती है। कुछ राज्यों में पोलिथीन पर रोक है। मगर वहां राजधानी या कुछ अन्य शहरों तक ही इस पर नियंत्रण दिखाई देता है। अन्य शहरों या गांवों में धड़ल्ले से इसका प्रयोग होते रहता है। तीर्थ स्थलों पर नदी-जल के प्रदूषण को नियंत्रित करने का एक मात्र कारगर उपाय है पोलिथीन थैले के निर्माण और उसके वितरण पर रोक लगा देना। यह काम अपेक्षाकृत आसान भी है, क्योंकि निर्माणकर्ताओं की संख्या बहुत कम होती है, जिन पर आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। कहीं-कहीं तो पोलिथीन बैग के उपयोगकर्ताओं को भी दंडित किये जाने का अव्यावहारिक नियम बनाया गया है। ऐसा नियम पर्यावरण राग का ऐसा गीत बन कर रह गया है, जिसे सुनने वाला कोई नहीं है।

नदी किनारे कूड़ेदान की व्यवस्था

तीर्थ स्थलों के निकटवर्ती नदी किनारे घाटों पर बड़े-बड़े जालीदार कूड़ेदान रख देने से लोग कचरा नदी में नहीं डाल कर उसी पात्र में डालेंगे। इससे पोलिथीन कैरी बैग उसी कूड़ेदान में जमा हो जायेगा और नदी का जल प्रदूषित होने से बच जायेगा। इसके लिये दो फीट गुणे तीन फीट के डेढ़ फीट गहरे पात्र का प्रयोग किया जा सकता है। मोटी जाली को एंगल आइरन के सहारे जोड़ कर तीन-चार फीट ऊंचे स्टैंड वाले ऐसे कूड़ेदानों को थोड़ी-थोड़ी दूरी पर लगाया जा सकता है। इस कूड़ेदान को ऊंचा रखना इसलिये जरूरी है, ताकि नदी का जल स्तर बढ़ने पर कचरा तुरंत बह कर नदी में नहीं चला जाये। जल स्तर अधिक बढ़ जाने पर कूड़ेदान को उठा कर ऊपर की ओर बढ़ाया जा सकता है। नदियों की पवित्रता और तीर्थ स्थलों के प्रति लोगों की श्रद्धा बनी रहे इसके लिये यह सबका कर्तव्य है कि वहां गंदगी नहीं फैलायी जाये।

इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि नदी किनारे के तीर्थ स्थलों पर तीर्थ यात्रा नहीं की जाये या वहां तीर्थ यात्री नहीं जायें। तीर्थ स्थलों की शोभा और गरिमा तो तीर्थ यात्रियों के आने से ही है। यदि यात्री ही नहीं आयेंगे तो वह तीर्थ कहां रह जायेगा? मगर जो भी तीर्थ यात्री आएं, वे उस स्थल को गंदा नहीं करें और दूसरे यात्रियों को भी गंदगी फैलाने से मना करें। जितना बड़ा तीर्थ स्थल, उतनी अधिक भीड़। यदि आने वाले तीर्थ यात्रियों द्वारा गंदगी फैलने से रोकने में सहयोग नहीं दिया गया तो गंदगी से घबरा कर भविष्य में लोग उस स्थल पर जाने से घबराने लगेंगे और उस स्थल का महत्व कमजोर पड़ जायेगा। तीर्थ स्थलों के किनारे बह रही नदी साफ-सुथरी रहे और वहां से आगे बह कर जाये तो अपने साथ स्वच्छ जल लेकर जाये, यह बहुत आवश्यक है। सभी तीर्थ स्थलों और उनके किनारे बहने वाली नदियों की जय हो!

संपर्क करें:
अंकुश्री
8, प्रेस कॉलोनी, सिदरौल
नामकुम, रांची (झारखण्ड)-834 010
मो. 8809972549
ईमेलः ankushreehindiwriter@gmail.com